International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 1063-1066

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 1063-1066
www.allresearchjournal.com
Received: 24-12-2016
Accepted: 09-01-2017

डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, अकादमिक प्रभारी, गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

Correspondence Author:
डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, अकादमिक प्रभारी, गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

भारतीय संस्कृति में भाग्यवाद और कर्मवाद

डॉ. सर्वजीत दुबे

सारांश
जीवन में भाग्य की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है और कर्म की भी। एक तरफ नितांत भाग्यवादी सब कुछ ऊपर वाले पर छोड़ कर अनुकूल समय का इंतजार मात्र करते हैं तो दूसरी तरफ नितांत कर्मवादी सब कुछ अपने ऊपर लेकर तनाव बहुत बढ़ा लेते हैं। भारतीय संस्कृति में भाग्यवाद और कर्मवाद दोनों के पक्ष में मनीषियों ने अपने-अपने मत रखे हैं। उन्हें जानकर भाग्य तथा कर्म के बीच जो संतुलन स्थापित कर लेता है, वह न तो निठल्लेपन का शिकार होता है और न तनाव का। कमल कीचड़ में खिलता है लेकिन कीचड़ में रहते हुए भी अस्पर्शित रहता है। संसार के घनघोर कर्म के बीच भी भाग्य में आस्था रखने वाले अपना धीरज नहीं खोते।

कूट शब्द: विधि, प्रज्ञा, पुरुषार्थ, दैव, प्रारब्ध, संचित, पलायनवाद।

प्रस्तावना
भारतीय संस्कृति में भाग्यवाद और कर्मवाद का सिद्धांत बहुत प्रचलित रहा है। ये जीवन की प्रमुख दो दृष्टियां हैं। भाग्यवाद जहां यह मानता है कि नियति ने सब कुछ पहले से ही निश्चित कर रखा है जो कि अवश्यमेव घटित होगा, वहीं कर्मवाद मानता है कि मनुष्य अपने कर्म से अपना भाग्य बदल सकता है। भाग्यवाद और कर्मवाद दोनों ही पक्षों के समर्थन में भारतीय संस्कृति के ग्रंथों में अनेक उदाहरण हैं, यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह किस रास्ते पर आगे बढ़ना चाहता है। भाग्यवाद का समर्थन करते हुए रामायण के किष्किंधा कांड में बाल्मीकि कहते हैं -

'नियति: कारणं लोके नियति: कर्मसाधनम्
नियति: सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम्।' (25/4)

अर्थात् जगत में नियति ही सबका कारण है। नियति ही समस्त कर्मों का साधन है। नियति ही समस्त प्राणियों को विभिन्न कर्मों में नियुक्त करने का कारण है।
महाभारत के आदि पर्व में वेदव्यास कहते हैं-

न विधिं ग्रसते प्रज्ञा प्रज्ञां तु ग्रसते विधि:
विधिपर्यागतानर्थान् प्राज्ञो न प्रतिपद्यते। (117/10)

अर्थात् बुद्धि प्रारब्ध को अपना ग्रास नहीं बना सकती। प्रारब्ध ही बुद्धि को अपना ग्रास बना लेता है। प्रारब्ध से प्राप्त होने वाले अर्थों को बुद्धिमान पुरुष भी नहीं जान पाता।

भारतीय संस्कृति के दो आधारभूत उपजीव्य काव्यों के इन दो दृष्टांतों को सुनकर कोई भी कह सकता है कि संस्कृत भाग्यवाद को बढ़ावा देती है।

लेकिन कर्मवाद का समर्थन करते हुए मत्स्यपुराण में कहा है-

त्यक्त्वाअलसान् देवपरान् मनुष्यानुत्थान युक्तान पुरुषान् हि लक्ष्मी:
अन्विष्य यत्नाद् वृणुरान्नृपेन्द्र तस्मात् सदोत्थानवत्ता हि भाग्यम्।(220/12)

अर्थात् हे राजन्! भाग्य पर भरोसा रख कर बैठने वाले आलसी मनुष्यों को त्यागकर लक्ष्मी सर्वदा अभ्युदय में तत्पर पुरुषों को प्रयत्नपूर्वक खोजकर वरण कर लेती है। अतः सदा अभ्युदयशील होना चाहिए।

पुरुषार्थ की पक्षधर योगवाशिष्ठ की यह प्रबल उक्ति विचारणीय है-

'परम पौरूषमाश्रित्य दन्तैर्दन्तान्विचूर्णयन्
शुभेनाशुभमुद्युक्तं प्राक्तन पौरुषं जयेत्।'

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि पूर्वजन्म के अशुभ पौरुष (अर्थात् दुर्भाग्य) के फलोन्मुख होने पर दांतो से दांतो को पीसते हुए परम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर शुभ कर्मों द्वारा उसको जीत ले।

शंकराचार्य ने तो पुरुषार्थहीन को जीवित ही मृत के समान बताया है-

'जीवन्मृत:कस्तु निरुद्यमो य: (शंकराचार्य प्रश्नोत्तरी 5)

अर्थात् जीवित ही मृत के समान कौन है? जो पुरुषार्थहीन है।

उपर्युक्त गंभीर ग्रंथों के अतिरिक्त लोक में प्रचलित ग्रंथ 'पंचतंत्र' में विष्णु शर्मा ने भाग्य को छोड़कर पुरुषार्थ करने का आह्वान किया है-

'उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरूषा: वदन्ति
दैवं निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्धयति को अत्र दोष:।

अर्थात् लक्ष्मी उद्योगी पुरुष को प्राप्त होती है। कायर लोग कहते हैं कि जो भाग्य में होगा वह मिलेगा। भाग्य को छोड़कर अपनी शक्तिभर यत्न करो, फिर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो इसमें कोई दोष तो नहीं है या यह देखो कि मेरे पुरुषार्थ में क्या दोष रह गया।

वस्तुत: भारतीय संस्कृति की दृष्टि कदापि एकांगी न रही। यहां पुरुषार्थ को महत्व दिया गया किंतु उसे फल प्राप्ति के लिए समर्थ कारण ही माना गया, संपूर्ण नहीं। तभी तो वेदव्यास महाभारत के वन पर्व में कहते हैं-

कुर्वतो नार्थसिद्धिर्मे भवतीति है भारत
निर्वेदो नित्य कर्त्तव्यो द्वावन्यौ ह्यत्र कारणम्। (32/50)

अर्थात् हे भारत! पुरुषार्थ करने पर भी यदि सिद्धि न प्राप्त हो तो खिन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि फल सिद्धि में पुरुषार्थ के अतिरिक्त प्रारब्ध तथा ईश्वरकृपा दो अन्य कारण हैं।

लेकिन एक और दृष्टि यह है कि जिस प्रकार एक चक्र से रथ की गति नहीं होती उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना भाग्य सिद्ध नहीं होता-

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति।।

इन दो उदाहरणों पर गौर करें तो हम पाते हैं कि पुरुषार्थ भाग्य के बिना अंधा है और भाग्य पुरूषार्थ के बिना लंगड़ा। जिस प्रकार अंधे और लंगड़े मिलकर जंगल की आग से बच निकलते हैं, उसी प्रकार पुरुषार्थ और भाग्य दोनों के सहयोग से ही मनुष्य की जीवन रूपी यात्रा दावानल से सफलतापूर्वक गुजर सकती है। अब इनमें से किसी के लिए पुरुषार्थ ज्यादा महत्व रखता है तो किसी के लिए भाग्य।

वेदव्यास महाभारत के अनुशासन पर्व में कहते हैं कि जैसे बीज खेत में बोए बिना निष्फल रहता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना भाग्य भी सिद्ध नहीं होता-

यथा बीजं बिना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम्
तथा पुरुषकारेण बिना दैवं न सिद्धयति। (6/7)

यही वेदव्यास सौप्तिक पर्व में पुरुषार्थ की जगह भाग्य को थोड़ा ज्यादा महत्व देते प्रतीत हो रहे हैं, जब वे कहते हैं-

उत्थान चाप्यदैवस्य ह्यनुत्थानं च दैवतम्
व्यर्थं भवति सर्वत्र पूर्वस्तत्र विनिश्चय:। (2/6)

अर्थात् भाग्यरहित पुरुषार्थ और पुरुषार्थ रहित भाग्य सर्वत्र व्यर्थ हो जाते हैं।इन दोनों में पहला पक्ष ही

सिद्धांतभूत एवं श्रेष्ठ है अर्थात् दैव के सहयोग के बिना पुरुषार्थ काम नहीं देता है।
लेकिन 'वेदों की ओर लौटो' का नारा देने वाले दयानंद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में कहते हैं- पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है कि पुरुषार्थ से संचित प्रारब्ध बनते हैं, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते है।
पुरुषार्थ और भाग्य में से कौन ज्यादा महत्व रखता है, यह व्यक्ति की दृष्टि और परिस्थिति पर निर्भर करता है; लेकिन शुक्रनीति में एक और अनूठा मार्ग दिखाया गया है-

दैवे पुरुषकारे च खलु सर्वं प्रतिष्ठितम्
पूर्वजन्मकृतं कर्मेहार्जितं तद् द्विधा कृतम्। (1/49)

भाग्य व पुरुषार्थ पर ही संपूर्ण जगत प्रतिष्ठित है। इनमें एक कर्म के ही दो भेद किए गए हैं -पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म 'भाग्य' है और इस जन्म में किया हुआ कर्म पुरुषार्थ है।
कुछ लोग संस्कृत भाषा पर भाग्यवाद को बढ़ावा देने वाली भाषा होने का आक्षेप लगाते हैं। यह उनकी अल्पज्ञता और एकांगी दृष्टि वाला होने का प्रमाण है। संस्कृत भाषा एक अथाह समुद्र के समान है और इस समुद्र में जो जितना गहरा उतरता है उतना ही दुर्लभ मोती उसे प्राप्त होता है। मेरी समझ में जीवन की सर्वांगीण दृष्टि इस भाषा में है। यदि भाग्यवाद की तरफ कुछ झुका हुआ उद्धरण संस्कृत के ग्रंथों में हैं तो उसका भी अपना एक व्यवहारिक एवं तार्किक पक्ष है। यदि कोई व्यक्ति अपना सर्वस्व किसी लक्ष्य प्राप्ति में लगा देता है और कर्त्तापन के भाव से पूर्णरूपेण भर जाता है तो उसे असहनीय तनाव होता है। ऐसी परिस्थिति में उसे यदि लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती है तो वह अवसाद में चला जाएगा। स्वयं को कर्ताधर्ता मानने के कारण कोई सहारा भी उसके पास नहीं बचेगा। अंततः यह दृष्टि उसके लिए आत्मघाती साबित होगी।
यदि नियतिवाद या भाग्यवाद को वह मानता है तो कर्त्तापन के अहंकार से मुक्त होकर परमात्मा का अवलंबन थाम सकता है। इस ब्रह्मांडीय व्यवस्था में थोड़ा सा विश्वास भी उसे बड़े तनाव से मुक्ति दिला सकता है। कोई व्यक्ति धन के पीछे पागल है और उसे मनोवांछित धन नहीं मिलता, कोई व्यक्ति पद के लिए दौड़ रहा है और उसे मनोनुकूल पद नहीं मिलता तो वह टूट जाता है। वह यह नहीं सोचता कि ऐसी अनेकों दुर्लभ व अत्यंत महत्व की चीजें हैं जो उसके किए नहीं हो रही। श्वास जिसके बिना वह जिंदा नहीं रह सकता उसके चलाए नहीं चल रही। बच्चा जब जन्म लेता है तो मां का खून उसके आहार होने के लिए दूध बन जाता है।इसको किसने किया?
वस्तुतः मानव जो कर सकता है वह बहुत क्षुद्र है। परमात्मा जो करता है, वह इतना विराट है कि हमारी क्षुद्र आंखों में समाता नहीं। इस विराट अस्तित्व के सम्मुख मनुष्य की हैसियत ही क्या है?-

तंतु प्रेरित गात्र हो तुम,एक पुतले मात्र हो तुम
इस जगत की नाटिका के क्षणिक भंगुर पात्र हो तुम।

विराट अस्तित्व तो अपने नियमों के अनुसार चल रहा है। मनुष्य चाहे तो अपनी दृष्टि शांति को बढ़ाने वाला बना सकता है या अशांति को बढ़ाने वाला।
एक दृष्टिकोण है कि भविष्य अनिश्चित है और परिवर्तनीय भी। मनुष्य चाहे तो भविष्य वैसा ही हो सकता है,जैसा वह चाहता है। भविष्य पूर्व से निश्चित नहीं है,मनुष्य के हाथ में है कि भविष्य को निर्मित करे।
यह जो दृष्टि है, इसका अपरिहार्य परिणाम मनुष्य की अशांति होता है। यदि भविष्य अनिश्चित है तो अशांत होना होगा, बेचैन होना होगा और असंतुष्ट होना होगा। उसे बदलने की कोशिश करनी होगी। यदि बदलाहट हो सकी, तो भी तृप्ति नहीं मिलेगी क्योंकि भविष्य का कोई अंत नहीं है। एक बदलाहट पचास और बदलाहट की आकांक्षा पैदा करेगी। अगर बदलाहट न हो सकी तो बहुत गहन पीड़ा, उदासी, विपदा घेर लेगी।
पश्चिम ने यह दृष्टिकोण लिया है। पश्चिम मानकर चलता है कि अतीत तो निश्चित है, हो गया। वर्तमान हो रहा है। आधा निश्चित है,आधा अनिश्चित है। भविष्य पूरा अनिश्चित है,अभी बिल्कुल नहीं हुआ है।
अगर भविष्य अनिश्चित है तो मुझे आज वर्तमान के क्षण को भविष्य के लिए अर्पित करना होगा ताकि भविष्य को मैं अपनी आकांक्षा के अनुकूल बना लूं।
इसके कारण व्यक्ति एक तरफ वर्तमान के क्षण से चूक जाएगा और दूसरी तरफ कल की चिंता से भर जाएगा। पश्चिम के इस दृष्टिकोण का नकारात्मक पक्ष यह है कि गहन अशांति हाथ में आती है और सकारात्मक पक्ष यह है कि भौतिक अर्थों में उपलब्धियां भी लाती हैं। पश्चिम में समृद्धि तो बहुत बढ़ी किंतु अशांति इतनी बढ़ी कि मनुष्य पागल हो गया है। अब विचार होने लगा है कि भौतिक समृद्धि की कीमत पर आदमी को पागल बनाने वाला दृष्टिकोण क्या उचित है?
पूरब का दृष्टिकोण यह है कि भविष्य नियत है, जो होना होगा, वह होगा। इस दृष्टिकोण का नकारात्मक पक्ष यह हुआ कि भौतिक समृद्धि पूरब में नहीं बढ़ सकी किंतु सकारात्मक पक्ष यह है कि जंगल में भी मंगल का जीवन जीने वाले इंसान हम पैदा कर सके।

पश्चिम बाहरी साधन में धनी हो गया किंतु अंदर से गरीब भी। पूरब बाहर से तो गरीब बना रहा किंतु अंदर की संपदा बचा सका। चुनाव करने पर व्यक्ति कुछ खोता है,तो कुछ पाता भी है। आज पश्चिम भी परेशान है और पूरब भी परेशान है। पश्चिम के लोग शांति के लिए पूरब की तरफ भाग रहे हैं और पूरब के लोग समृद्धि के लिए पश्चिम की तरफ भाग रहे हैं।

जीवन को पूर्ण बनाने के लिए रोटी, कपड़ा,मकान भी चाहिए और साथ ही साथ शांति, ध्यान, प्रार्थना भी। कर्मवाद का दृष्टिकोण रोटी, कपड़ा, मकान अर्जित कर सकता है किंतु शांति, ध्यान, प्रार्थना तो भाग्यवाद ही ला सकता है।

कुछ लोग भाग्यवाद का सहारा लेकर कर्म को छोड़ देते हैं-

अजगर करे न चाकरी,पंछी करे न काम
दास मलूका कह गए सबके दाता राम।।

मलूकदास के इस उद्घोषणा के प्रभाव में पलायनवाद काफी बढ़ा।

कुछ लोग कर्मवाद का सहारा लेकर जरूरत से ज्यादा तनाव अपने ऊपर ले लेते हैं। इस कारण से अवसाद, आत्महत्या बहुत ज्यादा बढ़ रही हैं। ऐसी परिस्थिति में गीता में कृष्ण की कही हुई मन: स्थिति हमारी पथ प्रदर्शक बन सकती है-

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते संगो अस्त्वकर्मणि।' (गीता 2.47)

भाव यह है कि अपने हिस्से का कर्म यथाशक्ति अवश्य करना चाहिए और बाकी सब कुछ परमात्मा पर छोड़ कर निश्चिंतभाव से जीना चाहिए। यही सारी विवेचना का परम संदेश है।

संदर्भ

1. मैक्समूलर- 'हम भारत से क्या सीखें' (अनु. कमलाकर तिवारी) ग्रंथ विकास जयपुर, 2003
2. कुमार डॉ. शशि प्रभा- आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता'नाग प्रकाशक, 1993
3. त्रिपाठी डॉ. भास्कराचार्य-'संस्कृत की पहचान' नाग पब्लिशर्स दिल्ली, 2001
4. ओशो - 'गीता दर्शन', कृष्ण स्मृति, मेरा स्वर्णिम भारत, दि रेबेल पब्लिशिंग हाउस
5. वैदिक डॉ. वेद प्रताप-संस्कृतभाषाम् च प्रतिष्ठापयत आंग्लभाषाम् उत्सारयत, नाग प्रकाशक दिल्ली 1998.
6. लाल डॉ. कृष्ण-'आधुनिक भारत में संस्कृत की उपादेयता' नाग प्रकाशक 1992.
7. कोठारी गुलाब-'क्या है संस्कृत शिक्षा का उद्देश्य? 'संपादकीय पृष्ठ पर राजस्थान पत्रिका 8/1/2007.
8. विपुल दयानंद भार्गव - 'भविष्य की भाषा भी है संस्कृत' संपादकीय पृष्ठ पर राजस्थान पत्रिका 15/10/2007.